Vol. 5, Isuue- 1 (January 2016) pp. 25-27 Sangeet Galaxy
ISSN: 2319-9695

घरानों की प्रासंगिकता

रूचि रानी गुप्ता
शोध छात्रा,
संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
Email: guptaruchirani@gmail.com

संगीत साधना की विषय वस्तु है। संगीत साधना के लिए विशेष शिक्षण की आवश्यकता होती है। आधुनिक युग में घरानों की परम्परा लगभग 300 साल पुरानी है। घरानों द्वारा ही सांगीतिक पैतृक सम्पत्ति को सुरक्षित रख पाना सम्भव हो सका है।

गुरू द्वारा दिये गये विशेष प्रकार के ज्ञान को शिष्य अपने शिष्यों को, फिर शिष्य अपने–अपने शिष्यों को देकर उस विशेषता को कायम रखते है, तो ऐसी गुरू शिष्य परम्परा ही 'घराना' का रूप ले लेती है। घराने के लिए एक ही परम्परा का कम से कम तीन पीढ़ियों तक कायम रहना आवश्यक है।

प्रो0 रमण लाल मेहता के अनुसार ''भारतीय संगीत के संदर्भ में पारिवारिक परम्परा (घराना) का महत्वपूर्ण स्थान है। इस देश में अनेक हुनर और कलायें है, जिन्हें आज भी जातियों और परिवारों ने अपने निश्चित दायरे में सुरक्षित रखा है। इन दायरों के फलस्वरूप, भारत की कलाओं की सुरक्षा हजारों वर्षों से होती चली आ रही है। इसके फलस्वरूप इस प्रणाली द्वारा अनेक उत्तम, अमूल्य, कलाओं की सुरक्षा हुई है। इसी प्रकार संगीत की कुछ विशिष्ट परम्परा, किसी विशिष्ट परिवार में पीढ़ी दर पीढ़ी सुरक्षित और विकसित होती चली जाती है। ऐसी परम्परा को घराना नाम दिया जाता है।

सन् 1850 ई0 तक तबलें के सभी छः घराने पूर्ण रूप से प्रचार में आ गये थे। विद्वानों के अनुसार सभी घरानों पर विभिन्न शासकों के शासन एवं सामाजिक परिदृश्य का प्रभाव पड़ा और सच ही है। सभी घरानों की अपने आप में एक अलग विशिष्टता है। आवश्यकतानुसार विद्वान जनों ने अपनी वादन शैली में परिवर्तन किए जिससे घरानों का आविर्भाव हो सका, यदि घरानों का आविर्भाव न हुआ होता तो हम अपनी पैतृक सम्पत्ति को सुरक्षित एवं संरक्षित न कर पाते। अतः मध्य युग में पल्लिवित घराना पद्धति को सांगितिक यात्रा में मील का पत्थर कहे तो अतिश्योकि नहीं होगी।

आज आप देश के किसी भी चोटी के कलाकार से पूछिए तो वह अपना परिचय किसी न किसी घराने से सम्बन्ध अवश्य ही बताएगा। यही सत्य भी है कि संगीत में कुशल कलाकार बनने के लिए किसी न किसी घराने की परम्परा को ग्रहण करना अति आवश्यक हो जाता है।

वर्तमान में अधिकतर कलाकार कला व शास्त्र एवं आलोचकों का कहना होता है कि ''घरानों की आवश्यकता नहीं है, घराने नष्ट भी हो तो कोई फर्क नहीं पड़ता'' घरानों के कारण लाभ की अपेक्षा नुकसान ही अधिक हुआ है, घराने धीरे–धीरे लुप्त होते जायेंगे। इस तथ्यों पर विचार करने से महसूस होता है कि ये तथ्य पूर्णतया गलत नहीं है क्योंकि राजपूत काल में 8वीं शताब्दी से 12वीं शताब्दी में संगीतकारों को राज दरबार में आश्रय मिला था, अतः उस युग का संगीत अधिकतर राज्याश्रय में ही उन्नति किया इस काल के कलाकार अपने संगीत ज्ञान को छिपाकर रखते थे वे अन्य जाति के लोगों को तो क्या अपनी ही जाति वाले

लोगों तक को बताने में संकोच करते थे, इस समय संगीत के ग्रन्थ भी लिखना वे पसन्द नहीं करते थे। यदि वे सिःसंतान होते, तो उनका संगीत उनके साथ ही समाप्त हो जाता। इन संकीर्ण मनोवृत्ति के फलस्वरूप संगीत के जगत में घरानों की नींव पड़ी, जिनकी परिपाटी ने संगीत के विकास को गति प्रदान की, जरा सोचिए यदि घरानें न होते तो हमें प्राचीन बंदिशों का संकलन कैसे प्राप्त होता हमारी सांगितिक पैतृक सम्पत्ति किस प्रकार सुरक्षित रह पाती इस दृष्टि से संगीत की दुनिया में घरानों ने विशेष भूमिका अदा की है। घरानेदार शिक्षण पद्धति में तालीम सीना–ब–सीना होती थी और गुरू, शिष्य को तराशने में पूरी तरह से ध्यान दे पाते थे। घराना शैली में शिष्यगणों को कठोर अनुशासन का पालन करना होता थो वे गुरू द्वारा प्राप्त दीर्घकालीन शिक्षा द्वारा कठोर साधना कर निखर जाते थे। गुरू अपने शिष्य को सर्वांगीण विधि से तराशता है। गुरू शिष्य को अपनी छत्रछाया में लम्बी अवधि तक रखता है जिससे शिष्य गुरू द्वारा दी गयी विद्या को आत्मसात कर सके। पहले गुरू शिष्य को दूसरे का संगीत भी नहीं सुनने देते थे कि कहीं उनके शिष्यों पर दूसरे घराने का असर न पड़ जाये और कही गुरू के घरानें की शुद्धता पर असर न पड़ जाये, इस प्रकार की परम्परा से कलाकार एक प्रदर्शनकारी कलाकार होकर निकलता था। घराना शैली में कलाकार बनने की क्षमता होती है यही कारण है कि आज भी अधिकतर प्रदर्शनकारी कलाकार किसी न किसी घराने से जुड़े है।

वर्तमान में प्रायः कुछ विद्वान जनों के अनुसार घरानों को नहीं मानना उचित है उनका कहना है जो पसन्द आए तथा जिस घराने की तकनीक से बोल बज सके बजाए जाये। इस प्रकार उनका कहना है कि प्रत्येक तबला वादक सब घरानों का तबला वादन कर सके परन्तु मेरे विचार से ये तथ्य सत्य प्रतीत नहीं होते क्योंकि सभी घरानों में हाथ का रखाव अलग है जैसे पश्चिम बाज दिल्ली और अजराड़ा में कायदों पर विशेष जोर देते हुए चाँटी के बोलों का निकास नजाकत तरीके से है, जबकि पूरब और पंजाब शैली का गूँजदार व जोरदार तबला बजाने के लिए पूरे पंजे का प्रयोग किया जाता है। इस शैली में लव का स्याही का तथा दो से अधिक अंगुलियों का प्रयोग करते है अतः पूरब व पश्चिम दोनों शैलियों के वादन के लिए हाथ के अलग–अलग रखाव से रियाज करने की आवश्यकता है जो कि असम्भव सा प्रतीत होता है क्योंकि यदि एक घराने की रचना भी यदि दूसरे घराने के वादन शैली से बजेगी तो वादन उतना प्रभावकारी सिद्ध नहीं होगा जितना कि एक घराने की रचना उसी घराने के वादन शैली के अनुसार किया जाये। सुधीर माईणकर जी के अनुसार फर्रुखाबाद घराने के कलाकार उस्ताद अहमद जान थिरकवा जी मात्र ऐसे कलाकार थे जिन्होंने सभी घराने का तबला बजाया।

वर्तमान में आवश्यकता इस बात की है कि घरानेदार शिक्षण प्रणाली व विद्यालयी शिक्षा प्रणाली का समन्वय करने की कोशिश उच्च स्तर पर की जानी चाहिए ताकि शिष्यों को कला के साथ ही शस्त्र की भी जानकारी प्राप्त हो सके क्योंकि विद्यालयी शिक्षा द्वारा हमारी सांगितिक पैतृक सम्पत्ति को सुरक्षित नहीं रखा जा सकता यदि घरानें न होते तो हमारे संगीत की पैतृक सम्पत्ति संरक्षित व सुरक्षित नहीं होती तथा हमें भारतीय संगीत के रहस्यों का ज्ञान भी नहीं हो पाता। इसलिए संगीत में तकनीक, विद्यालयी शिक्षा के साथ–साथ घरानों को विशेष महत्व दिया जाना चाहिए ताकि युनिवर्सिटी, महाविद्यालयों आदि से शिक्षक के साथ–साथ प्रदर्शनकारी कलाकार भी उत्पन्न हो सके क्योंकि हमारी संगीत एक प्रदर्शनकारी कला है और ये हमें कभी नहीं भूलना चाहिए।

संदर्भ

1. सुधीर माईणकर, तबला वादन में निहित सौन्दर्य, सरस्वती पब्लिकेशन, पृष्ठ 204
2. मनोहर भालचन्द्र राव, वालवाद्य शास्त्र, शर्मा पुस्तक सदन ग्वालियर, पृष्ठ 123
3. स्वतन्त्र बाला शर्मा, भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण, अनुभव पब्लिशिंग हाउस, पृष्ठ 276
4. सुधीर माईणकर, तबला वादन कला और शास्त्र, अ0भा0 गांधर्व महाविद्यालय मण्डल, मिरज, पृष्ठ 215